देवांगना

देवेंद्र

देवांगना

गोपाल मंदिर के पिछवाड़े एक लंबी सुरंग की तरह अँधेरी गली है। यह गली एक पुराने खंडहरनुमा मकान के बड़े से फाटक तक जाकर बंद हो जाती है। बंद गली के इस

आखिरी मकान का बड़ा सा आँगन और आँगन से लगे तेरह कमरों में अलग-अलग तरह के परिवार पुश्त-दर-पुश्त से एक साथ रहते चले आ रहे हैं। ऊब, तिरस्कार और सीलन से भरी एक अँधेरी कोठरी में यहीं चन्नर और भिक्खू के साथ एक तेरह साल की लड़की चंपी भी रहती है। अलग-अलग परिवारों के इस भरे-पूरे कुनबे में ब-मुश्किल ही कोई यह बता पाता है कि चंपी वास्तव में भिक्खू की नहीं चन्नर की बेटी है।

बच्चे पूरे दिन आँगन में उछल-कूद और मार-पीट करते रहते हैं। औरतें गेहूँ पछोरते हुए पड़ोसिनों की जासूसी करती रहती हैं। दिन भर के काम से फुर्सत पाकर शाम के समय, जब नल से पानी टपकने लगता और बाल्टियाँ खड़खड़ाने लगतीं, परकीया नायिकाओं में वीर रस का संचार होने लगता। गुप्त सूचनाएँ सार्वजनिक की जातीं। देर तक कुहराम मचा रहता। पति पत्नियों को बेरहमी से पीटते। पत्नियाँ सौतों को निर्ममता पूर्वक सरापतीं। शांत होने पर सब भर पेट भोजन करते और अपनी-अपनी माँदों में सो जाते। चेचक और हैजा और सिफलिस की शीत निद्रा जब यहाँ से भंग होती तो समूचा शहर श्मशानों की ओर भागता। तब भी यह आँगन चीखों और चिल्लाहटों के बीच अपनी जनसंख्या के प्रति सावधान बना रहता। चंपी भी इस आँगन में साझे की हकदार है। लेकिन कभी-कभार चड्ढी सुखाने या नल पर पानी भरने के अलावा वह आँगन का कोई उपयोग नहीं करती।

समूचा जीवन अभावों और उपेक्षाओं में बिता लेने के बाद हिंदुओं की बाल विधवाएँ पचास-पचपन की उम्र तक जाकर प्रचंड रूप से कामुक हो उठती हैं। उनके भीतर का क्षमा भाव खत्म हो जाता है। जबान दुधारी तलवार हो जाती है। सामने के ईंट-पत्थर भी रास्ता छोड़ देते। ऐसी ही एक औरत महीने की हर पहली तारीख को किराया वसूलने के लिए उस आँगन में प्रकट होती है। उसी समय सारे किराएदार इकट्ठा होकर अपनी-अपनी शिकायतें अरज करते कि - लैट्रिन का पत्थर टूट गया है और पानी डालने पर सारी गंदगी बहकर आँगन में चली जाती है। कोई दीवार के दरकने की तो कोई छत के टपकने की बातें बताता है।

बुढ़िया आँखों पर जोर देकर पैसे गिनते हुए अन्यमनस्क भाव से सब कुछ सुना करती। छोटे और नीच लोगों के मुँह लगना वह जरूरी नहीं समझती। अगर कोई हद ही कर देता तो चीख उठती - "हरामजादों, हमने तुम्हारे पुश्त-दर-पुश्त का ठेका नहीं ले रखा है। बारह रुपए तो किराया देते हो और तुम्हें राजमहल चाहिए। कुत्ते की औलादों, निकलो, भागो यहाँ से।" फिर सारे किराएदार अपने-अपने कमरों में दुबक

जाते। इस तरह मैदान फतह कर लेने के बाद वह घृणापूर्वक लैट्रिन की ओर देखती और नाक बंद करके निकल जाती।

बुढ़िया के चले जाने के बाद एक-एक कर बारी-बारी से सब बाहर आँगन में इकट्ठे होते और उसकी शिकायतें बतियाते। इस शिकायतनामें में चन्नर या भिक्खू या चंपी कभी भी शामिल नहीं होती। बुढ़िया से लेकर ईश्वर तक फैली इस दुनिया में उन्हें किसी से कोई शिकायत नहीं है। सिर्फ अपने काम से मतलब।

रोज काम पर जाने से पहले चन्नर देशी शराब के ठेके पर जाता है। उबली हुई मटर, हरी मिर्च और नमक के साथ वह सुबह-सुबह चार-पाँच कुल्हड़ चढ़ा लेता है। उसके डेली शराब की वजह से न चंपी को कोई शिकायत है, न भिक्खू को। उसके मुँह का तेज भभका बगल से गुजरते समय अगर कभी किसी शरीफ को छू जाता तो वह नाक बंद करके घृणापूर्वक उसे देखता और सोचता कि "ये साले इतने नीच होते हैं कि भरपेट भोजन भले नसीब न हो, शराब जरूर पिएँगे। यही इनकी दरिद्रता और बीमारी का मूल कारण है।" चन्नर मुस्कराता है - "अरे, ओ भले मानुसों, तुमने शहर को इतना गंदा कर रखा है कि उनकी सड़ांध से बचने के लिए हमें पीनी पड़ती है। अगर हम नहीं होते तो तुम और तुम्हारे शहर की सफेदी एक सड़ी हुई सूअर की तरह घिन्नाती रहती।" लेकिन विचारों और शब्दों के बिना भी जीवन का अपना तर्क होता है। भरसक चन्नर लोगों की घृणा से बचना चाहता है फिर भी बच नहीं पाता और खिः खिः करके हँसता रहता।

ठेके वाली दुकान से हिलते-डुलते चन्नर सीधे चीरघर पहुँचता है। उसे अपनी बड़ाई हाँकने की कोई आदत नहीं है, लेकिन इतना जरूर बताता कि - "बगैर मेरे डॉक्टर कुछ नहीं करता है। डॉक्टर तो नाक और मुँह पर हरे कपड़े की पट्टी बाँधे दूर खड़ा होकर बस इशारे भर करता है - चन्नर उस जगह पर चाकू लगाओ। उधर छाती के नीचे। बाईं तरफ और लाशें ऐसी कि कभी-कभी बटन खोलने में चाम उघड़ने लगता है।" घिन्न और बदबू से भरे उस कमरे में खड़ा-खड़ा चन्नर दिन भर में तीन चार लाशें जरूर चीर लेता है। कभी-कभी लाशों के साथ आए हुए लोग उससे सिफारिश करते - "देखो भैया, जरा कायदे से टाँके लगा देना। ये दस रुपए रख लो। बढ़िया से सी देना।" जब काम निबटा कर वह खुली हवा में बाहर आता तो जी भरकर उल्टियाँ करता है। उल्टी में निकली दारू की तीखी गंध उसके फेफड़ों को तरोताजा करती है। शाम को घर आने के बाद वह दुबारा चढ़ा लेता है। जब वह पीने की अति कर देता और चल फिर नहीं पाता तो भिक्खू को थोड़ी तकलीफ होती है। उसकी आमदनी मारी जाती है।

भिक्खू की आमदनी का आधा हिस्सा शाम को ही वसूल होता है। वह दिन के चार बजे से ही अपनी लकड़ी की गाड़ी पर टीन का कटोरा और फटा कंबल बिछाकर चन्नर का इंतजार करता रहता है। आने के बाद चन्नर भिक्खू को उसकी गाड़ी पर बैठा कर चौक, गोदौलिया, बेनियाबाग, लहुराबीर और मैदागिन होते हुए बुलानाला तक पीछे से ढकेलता। राहगीरों और बनियों की दया उसके कटोरे में खनकती रहती है। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह सिक्कों को बटोर कर कंबल के नीचे दबा देता। खाली कटोरे में लोगों की दया फिर से टपकने लगती। इतनी दूरी का चक्कर लगाने के बाद अँधेरा घिरने लगता है।

बुलानाला के अग्रवाल धर्मशाले के सामने शहर भर के अपाहिजों और भिखारियों की मंडली लंगर की प्रतीक्षा करते हुए गाँजे के धुएँ में उड़ रहे संसार के सुख और उसकी सार्थकता को महसूस कर रही है। अनावृत दुनिया और तारों से भरा आकाश उनकी पलकों पर झुककर झपकी ले रहा है। एक भिखारी, जिसके दोनों पैर घुटनों के नीचे से गायब थे, अपने हाथों के सहारे मेंढक की तरह उछलता हुआ भिक्खू के पास आकर जोर-शोर से चीखने लगा - "उस्ताद, भुल्लन को मना कर दो, वह रोज दोपहर को मेरे इलाके से पैसा बटोर ले जा रहा है।"

भिक्खू ने अफसोस करते हुए कहा - "साले भुल्लन का तो ईमान मर गया है। अब इतनी दफे मार खाकर भी अगर यह नहीं सुधर रहा है तो पंचायत में बात रखो। इसे शहर निकाला दे दिया जाय।"

भुल्लन दूर बैठा था। अपना नाम सुनते ही सजग हो गया। अपनी गाड़ी को सड़क पर हाथों का टेक देकर दौड़ाता हुआ वह भिक्खू के करीब आया और कहने लगा - "अगर तुम्हें सरदारी करनी हो तो सबकी बात सुना करो। हर दफे एकतरफा बात सुनते हो। और शहर से क्यों निकाला दोगे। सब लोग मिलकर भेलू की तरह मुझे भी गटर में ढकेल दो। शहर फैल कर तिगुना हो गया। अब दस साल पुराना बँटवारा नहीं चलेगा।"

- "साले, कितनी बार तो कह चुका हूँ मेरे सामने न चिल्लाया कर।" - भिक्खू का करारा चाँटा भुल्लन की नाक पर पड़ा।

चितकबरी तिलमिला गई। अगर यह भुल्लन मउगा न होता तो भिक्खू की क्या मजाल जो इस तरह हाथ चला देता। अगर दूसरे भिखारी दौड़ कर उसे पकड़ते नहीं तो जैसा कि वह चीख भी रही थी आज वाकई भिक्खू की सरदारी उसके उसमें भीतर तक घुसेड़ देती। तब भी रोकते-रोकते उसने अपना कटोरा भिक्खू के सिर पर चला ही दिया। वह तो चन्नर ने लपक कर कटोरे को बीच में ही रोक लिया, वरना आज भिक्खू

का सिर दो-फाड़ जरूर हो जाता। चितकबरी छटपटा कर अपने को छुड़ा रही थी। चन्नर ने ललकारा - "तू सब बीच में से हट जा। मैं इसकी जवानी अभी ठंडी करता हूँ।"

"तू मेरी जवानी निहारेगा! ले देख-देख!"-चितकबरी दोनों हाथों से साड़ी उठाकर उछलने लगी - "मैं तेरा खून पी जाऊँगी।"

- "मैं भी रोज आदमी लोगों को ही चीरता हूँ! चन्नर ने चेताया।

भुल्लन और चितकबरी का रिश्ता जग जाहिर है। भिखारियों के समाज में वह बहुत बदनाम, झगड़ालू और तरह-तरह के व्याधियों का घर मानी जाती है। किसी की क्या हिम्मत जो उसके मुँह लगे। सब उसे विधायक जी के नाम से पुकारते हैं। लेकिन चन्नर भी तो कम नहीं। खड़ा आदमी चीर डालता है। चितकबरी को आज भरपूर मरद से पाला पड़ा है। वह भीतर से डर रही थी और चीख रही थी - "भिक्खू ने भुल्लन को मारा है। और उल्टे यह चन्नर गुंडई कर रहा है। सरकारी नौकरी करता है। इसे हमारे बीच में बोलने से क्या मतलब?"

कई भिखारियों ने भुल्लन का पक्ष लिया - "शहर फैलकर तिगुना हो गया है। और अब वह दस साल पुराना बँटवारा नहीं चलेगा। हम फिर से शहर को बाँटेंगे।" चारों ओर हाँव-हाँव, काँव-काँव मच गया।

धर्मशाले के भीतर से एक नौकर हाथों में बड़ा सा लट्ठ लिए बाहर निकला और एक आवाज के पेट में कोंच कर जोर से चीखा - "चोप्प सालों क्या शोर मचा रखा है।" सब चुप होकर पाँत में बैठने लगे।

परात में भरी पूड़ियों-सब्जियों को लिए नौकरों के साथ भद्रजन बाहर निकलते हैं।

...भद्रजन!

संसार में ऐसे बहुत सारे लोग हैं जिनके पास अथाह संपत्ति है, और वे लोग दुखी भी हैं। वे दुखी हैं इसलिए कि घर से निकलने पर बिल्लियों ने तीन बार उनके रास्ते काट दिए हैं। सातवीं पुत्री के बाद भी पुत्र नहीं हो रहा है। वे इसलिए भी दुखी हैं कि इस साल उनका 'मारकेस' चल रहा है। वे पन्ना उतार कर नीलम पहनते हैं। सनीचर का प्रकोप बढ़ता है और वे नीलम की जगह दूसरे रत्न की तलाश करते हैं। दान और दया को सर्वोच्च मानवीय गुण मानने वाले भद्रजन दुकानों के घाटे और रोज-रोज की हड़ताल से दुखी हैं। ज्योतिष के शुभ फल न देने से दुखी भद्रजन संसार को दुख का कारण

मानते हैं और मोक्ष की कामना पर किताबें लिखते हैं। वे रोज-रोज के आतंकवाद के कारण मृत्यु के भय से दुखी हैं। दुख सबको माँजता है और वे अपनी स्थूल काया, बुद्धि की खोटी माया से दुखी हैं। अपने सुख की कामना के लिए, जिसे उनके दर्शन में निरा भ्रम बताया गया है, और कभी-कभी सुख के एवज में दुर्गादत्त चुन्नीलाल सागरमल खंडेलवाल जाने कैसे-कैसे रूप नाम वाले भद्रजन ही इन धर्मशालों में चन्नर और भिक्खू और ऐसे ही सैकड़ों लोगों का जीवन चला रहे हैं। उनके सत्कर्मों से जो सभ्यता जन्मती है उसी का नाम चंपी है। लिपिस्टिक और गाढ़े लाल रंग की बनारसी साड़ी का विज्ञापन कर रही मोटी सेठानी को ललचाई नजरों से देखते हुए भुल्लन धीरे से बुदबुदाया - "अगर एक बार इसके गूदेदार चूतड़ों पर सोने को मिल जाय तो इस जनम की सारी साध बुझ जाती।" उसने भिक्खू से कहा - "उस्ताद, इस ससुरी की रान तो देखो! चल नहीं पा रही है।"

चन्नर और भिक्खू अपने-अपने हिस्से की पूड़ियों और सब्जियों में से थोड़ा-थोड़ा बचा लेते हैं। गली से गुजरते हुए नींद और रात के सन्नाटे के बीच उनकी गाड़ी की खड़खड़ाहट सुनकर चंपी सजग होकर उठ जाती है। बची पूड़ियों से पेट भरने के बाद वह उँगलियों को चाट-चाट कर साफ करती। हाथ मुँह गंदे कपड़े से पोंछ कर कोठरी के दूसरे कोने में अपने लिए कंबल बिछा लेती है। उसके आसपास चन्नर और भिक्खू की खर्राटों के सिवा कुछ भी नहीं होता। कभी-कभी कोई कीड़ा उसके बदन पर रेंगने लगता तो वह निश्चिंतता पूर्वक उसे मसल कर दूसरी तरफ फेंक देती। इस खुले आकाश और भीड़ भरी दुनिया में बंद अँधेरे और उमस से भरी यही उन तीनों की छोटी सी जिंदगी है।

और यह जिंदगी भी क्या है? गली से लेकर मुहल्ले तक कोई भी लड़का चंपी के साथ खेलना तो दूर, बातें करना और छूना भी घिन्न की चीज समझता है। दो-तीन दिन तक वह सिटी स्टेशन के पास जाकर पटरियों के आसपास कूड़ों के ढेर में से छोटी-छोटी इच्छाएँ बीन कर बोरे में जमा करती रही। पहले से इस काम में लगे लड़कों ने चंपी को मारा पीटा। लेकिन फिर सब अभ्यस्त हो गए। एक लड़के से उसकी दोस्ती हो गई। लड़का यहाँ आने से पहले सब्जी मंडी जाता और वहाँ से कुछ सड़े हुए संतरे और केले जरूर ले आता था। कूड़ों के ढेर में वह लोहे की कोई चीज पाता तो चंपी को थमा देता। और चंपी प्लास्टिक की कोई चीज पाती तो उसकी ओर फेंक देती थी। फिर दोनों रेल की पटरियों पर आमने-सामने बैठकर संतरे और केले खाते। चंपी का मन लग गया। कैसे तो ताकता रहता है - चंपी को हँसी आ जाती और वह दूसरी ओर मुँह फेर लेती।

गर्मियों की दोपहर थी एक दिन। दूसरे लड़के जा चुके थे। सड़क पर इक्के-दुक्के लोग आ जा रहे थे। उधर दूरी तरफ जहाँ नालों का गंदा पानी इकट्ठा हो गया था, वहीं थोड़ी नमी पाकर उग आए बेहया के छोटे-छोटे पेड़ों की आड़ में वह लड़का चंपी को लेकर गया। दस-बारह सूअरें वहीं आराम से लेटी थीं। चारों ओर गू और गंदे-गंदे लत्ते बिखरे थे। यहाँ क्यों ले आया है? चंपी को डर लग रहा था। डर तो वह लड़का भी रहा था। लेकिन उसका डर दूसरी तरह का था। वह बेहद चौकन्ना था। एक बार उसने आसपास देखा और चंपी के दोनों कंधों को पकड़कर उसके सामने खड़ा हो गया। सारी देह इस तरह काँप क्यों रही है? "धत"! - चंपी ने कहा और दूसरी ओर जाने लगी। लड़के ने उसके कुर्ते को पकड़कर अपनी ओर खींचा। "क्या है?" - चंपी ने उसकी आँखों की ओर देखते हुए धीरे से कहा।

"तू जरा अपनी चड्डी खोल दे, मैं देखूँगा।" - लड़के ने कहा।

"भाग! हरामी कहीं का।" - चंपी ने झटक कर अपना कुर्ता छुड़ाया और वहाँ से भाग गई। उसकी साँस तेज-तेज चल रही थी। हाथ, पैर और सारा शरीर काँप रहा था। वह खुले में आकर रेलवे पटरी पर बैठ गई। वहीं एक मरा हुआ कुत्ता बदबू कर रहा था। दो गिद्ध और तीन-चार कौवे उसे नोंच रहे थे। लड़का देर तक उधर ही घूमता रहा।

थोड़ी देर बाद वह वहाँ से उठकर आया और चंपी से अपने केले और संतरे माँगने लगा। "मैंने क्या तुमसे माँगा था? तुमने तो अपने मन से दिया था।" - चंपी को उसकी नीचता पर गुस्सा आया। लड़के ने उसके बोरे का सारा सामान बिखेर दिया। बोरा भी फाड़ डाला और उसके पेट में तीन-चार लात मारी। चंपी रोने लगी। लड़का उसे गालियाँ देता हुआ दूसरी ओर चला गया। तब से चंपी ने वहाँ जाना बंद कर दिया।

अब वह पूरे दिन अपनी अँधेरी कोठरी में पड़ी रहती। कभी-कभी बाजार से लाए हुए तेल और सिंदूर को मिलाकर सड़े मांस के लोथड़े की तरह गाढ़ा लेप बनाती। भिक्खू के घावों पर उस लेप को आहिस्ते-आहिस्ते इस तरह लगाती कि उसके बीसों उँगलियों के कोढ़, उनकी सड़न, ज्यादा से ज्यादा घृणा और दया पैदा कर सके। मवाद की जलन को न सह पाने के कारण भिक्खू कभी-कभी तो चीखता लेकिन सामान्यतः वह अपने घावों को इस तरह सेता और देखता है जैसे बाप अपने 'कमासुत' को। भिक्खू सोचता - "कितने अच्छे से चंपी इन घावों को उभार देती है।" वह मुग्ध भाव से देखता जैसे साबुन के विज्ञापन में झागों से भरी लड़की की पिंडलियाँ हों, जाँघें हों, जाँघों के ऊपर! थोड़ा सा ऊपर। अब दिखा। तब दिखा!! और फिर दिख जाता है साबुन। सारा मजा किरकिरा। साबुन नहीं, लड़की की देह टकसाल होती है। भिक्खू के घाव भी टकसाल

हैं। बहुत पहले भिक्खू की जिंदगी में ये घाव हुए थे और अब इन घावों के कारण भिक्खू की जिंदगी है। घावों पर बैठी मक्खियों को वह अचूक निशाने से मारकर धीरे-धीरे उनके पंखों को छीजता रहता है।

लेकिन मारपीट का यह काम मंदिर के सामने वाली गली में बैठे होने पर वह कभी नहीं करता। वहाँ वह हर आने-जाने वाले को सिर्फ दस-पाँच पैसे या कभी-कभी चवन्नी-अठन्नी के रूप में देखा करता। चंपी दोपहर को एक बार भिक्खू के पास जाकर उसके कटोरे में से किसी श्रद्धालु का जूठन उठा लाती है।

अमीर हो या गरीब, उम्र की निश्चित परिधि के पास जाकर हर लड़की अपनी सामर्थ्य और आकांक्षाओं भर जवान होती है। चंपी को चौदहवाँ साल लग रहा था। अपनी देह के भीतर से उग रही नई देह को देखकर उसे अचरज भी होता और भय भी बना रहता। छातियों के हल्के गुनगुने दर्द और शरीर में टूटन के कारण वह आशंकाओं में पड़ी-पड़ी हर समय अलसाई रहती। एक दिन कोठरी में ही कपड़े बदल रही थी। दूसरे कोने में बैठा भिक्खू घावों के आसपास सूखे चमड़ों को निकोट रहा था। बहुत दिनों बाद उसने चंपी को इतना करीब से देखा। "यह कैसी हो रही है?" - उसे चिंता हुई।

उस दिन चन्नर देर रात को लौटा तो नशे में धुत्त था। उसके समूचे कपड़ों पर उल्टी के गीले-गीले दाग और छींटे थे। उसके सारे शरीर से तीखी बदबू आ रही थी। कोठरी में घुसते समय उसके दोनों पैर उलझ गए और वह दीवार से टकरा गया। भिक्खू उसे थाम कर नाली के पास ले गया और अपनी गंदी बाल्टी का दो लोटा पानी उसके सिर पर डाला। थोड़ा स्थिर होने के बाद वह फर्श पर बिछे कंबल पर जाकर लेट गया। आंतें तो बिल्कुल खाली पड़ी हैं। नींद नहीं आ रही थी। वह उठकर बैठ गया और भिक्खू से पूछा - "कुछ खाने को मिल जाएगा?"

भिक्खू ने चंपी से कहा - "जा, मुनीम जी और सरदारिन के यहाँ पूछ आ! कुछ बचा हो तो लेती आना।"

सरदारिन बर्तन धोने जा रही थी। चंपी को देखते ही समझ गई। थोड़ा चावल और दाल बची थी। उसने चंपी के कटोरे में डाल दिए।

जब चन्नर पेट भर रहा था तो उसी समय भिक्खू ने बात चलाई। - "चन्नर! तुमने कभी चंपी पर ध्यान दिया कि नहीं?"

चावल और दाल के बीच फँसा हुआ पत्थर का एक टुकड़ा दाँतों में फँस कर तड़तड़ा उठा। चन्नर ने दीवार की ओर थूका और पूछा - "क्या बात है?"

भिक्खू ने कहा - "हम लोगों की जिंदगी तो जैसे-तैसे कट गई। चंपी की उमर बढ़ रही है। शादी-बियाह करोगे?"

चन्नर ने बाहर नाली के पास जाकर हाथ मुँह धोया। भीतर आया तो भिक्खू के करीब बैठ गया। उसने बीड़ी सुलगाई और कहने लगा - "भिक्खू, असली बात तो कोई नहीं जानता है। तुम भी नहीं। सब मुझे मेहतर ही जानते हैं। लेकिन मैं 'सोनाडीह' गाँव का वाम्हन हूँ। अब तो मुझे अपने गाँव की शक्ल भी याद नहीं। इसकी महतारी रम्मन मेहतर की बेटी थी। ससुरी हैजे में मर गई। कितना समय बीत गया। मैंने औरत की देह नहीं देखी। यह जवान हो गई। मेरे पास एक धेला भी नहीं है। लड़की का बाप पैसा न जोड़े तो घर में रंडीखाना खोले।"

"अब वाम्हन और मेहतर में का धरा है?" - भिक्खू ने कहा - "तू केवल लड़का खोज ले। भगवान की दया से पैसे का जुगाड़ मैं कर लूँगा।"

दूसरे कोने में कंबल पर लेटी चंपी अँधेरे में छत पर आँखें गड़ाए हुए सुन रही थी और सोच रही थी। वह उस लड़के के बारे में सोच रही थी जो कूड़ा बीनते समय संतरे और केले खिलाया करता था। झाड़ियों की आड़ में ले जाकर कितनी जोर से पकड़ रखा था। बातें तो कैसी-कैसी करता था। हर समय हँसता रहता। उस दिन कितने जोर से लात मारा था पेट में। सोचते-सोचते चंपी का पोर-पोर दुख उठा और वह मुस्करा कर रह गई।

सवेरे सोकर उठने पर चन्नर नाली के पास बैठकर देर तक खाँसता और उल्टियाँ करता रहा। चंपी ने लोटे के पानी से उसे कुल्ला कराया। फिर वह अपने काम पर चला गया।

उसके कई दिन बाद। दोपहर को मंदिर में दर्शनार्थी कम हो जाते। भिक्खू घर चला आता। उस दिन वह अपनी कोठरी में बैठा था। चंपी बाहर नल पर नहा रहे एक लड़के को देख रही थी। वह लड़का देह मल रहा था और ऊपर छत पर बैठी एक लड़की को देख रहा था। भिक्खू को लड़के का अंदाजा नहीं था। वह एकटक चंपी को देख रहा था। उसकी छातियाँ! सुग्गे के दो बच्चे दुनिया का सुख देखने के लिए घोसलों के बाहर सिर उठाए हुए थे। भिक्खू की आँखें देर तक चंपी की देह पर छिपकली की तरह रेंगती रहीं। उसने चंपी को बुलाया "बेटी, जरा इधर तो आना।"

लड़का नहा कर जा चुका था। चंपी उठ कर भिक्खू के पास चली आई। "बेटी -भिक्खू ने कहा - "जरा घावों पर लेप तो लगा दे।"

चंपी ने ताखे पर से सिंदूर के लेप वाला कटोरा उठाया और एक-एक कर भिक्खू के घावों पर लेपने लगी। भिक्खू सरक कर उसकी देह से सट रहा था। चंपी को अटपटा सा लगा। वह जल्दी-जल्दी काम निबटा कर आँगन में भाग गई। भिक्खू ने पुकारा - "कहाँ जा रही है?"

"गली में" - चंपी ने कहा और गली की ओर मुड़ गई।

"पैसे लेती जा, कुछ खरीद लेना" - भिक्खू ही इस संयुक्त परिवार में पैसे का अकेला ठोस स्रोत था। गाहे-ब-गाहे चंपी भिक्खू से ही पैसे के लिए रिरियाती थी। आज वह खुद पैसा देने के लिए बुला रहा है। वह तुरंत लौट आई। भिक्खू ने उसे दो रुपए के फुटकर निकाल कर दिए। जब वह जाने लगी तो बोला - "बस बेटी, जरा बैठकर पैरों में पट्टी बाँध दे।"

चंपी ने पैसे बुशर्ट के जेब में डाले और बैठ गई। - लेकिन यह भिक्खू आज इतना सट क्यों रहा है? - चंपी समझी नहीं। वह उसके घावों को दबाकर मवाद निकालने लगी। फिर जल्दी-जल्दी पट्टी बाँध कर गली में भाग गई।

भिक्खू रोज दोपहर को कोठरी में आता। चंपी उसे रोज उसी तरह लेप लगाती। पट्टी बाँधती। बदले में अब वह किसी दुकान के सामने जाकर खड़ी होती तो अब दुकानदार उसे झिड़क कर भगाते नहीं थे।

बगल वाली सरदारिन अक्सर भिक्खू से उधार पैसे लिया करती थी। पैसा लौटाते समय सूद के दाम जोड़ने में अक्सर सरदारिन भिक्खू से झगड़ा भी करती थी! चंपी और भिक्खू और चन्नर की इस एकांत अँधेरी दुनिया में सरदारिन का ही थोड़ा-बहुत दखल था। एक दिन जब वह भिक्खू की कोठरी के सामने गई तो दरवाजा भीतर से बंद था। उसे अचरज हुआ - 'अरे, ई भिखुवा कब से दरवाजा बंद करने लगा।' उसने दरवाजे को ठेला। भीतर से कुंडी चढ़ी थी, बेटी की बात महतारी से, घर की बात पड़ोसियों से। पड़ोसियों को मुहल्ले से जोड़ने में महारत हासिल है सरदारिन को। वह सुराख से अंदर झाँकने लगी। जाड़े की धूप मुश्किल से आँगन में उतरती। चारपायी पर बैठकर बूढ़े मुनीम जी महाभारत पढ़ रहे थे - "पारासर मुनि ने उस मल्लाह कन्या से कहा, अगर तुम मेरे साथ संसर्ग करो तो तुम्हारी काया स्वर्णाभ हो उठेगी। योजन दूरी तक सुगंध बिखेरेगी। योजनगंधा!! अपने अभंग कौमार्य का रोना रोते हुए वह मत्स्यगंधा

बार-बार अपने को छोड़ देने का आग्रह कर रही थी। शांत नदी पर दोपहर का एकांत आकाश झुक आया था। मध्य धारा में नाव के ऊपर एक तेरह साल की धीवर कन्या थी और एक बूढ़े ऋषि। लड़की ने दूर होते जा रहे किनारे पर अपनी फूस की छोटी झोपड़ी को असहाय नजरों से देखा। "तुम मुझे अभंग कौमार्य दो। मैं तुम्हें अक्षत यौवन वाली स्वर्णाभ काया दूँगा।"

एक तरफ थी गरीब धीवर कन्या। अपनी देह-दुर्गंध से कुंठित। दूसरी तरफ समर्थ पुरुष। ब्रह्मज्ञानी ऋषि। कब तक तर्क करती। एक छोटी सी मछली हवा का बुलबुला पीने के लिए ऊपर आई ही थी कि आकाश में उड़ रही एक चील ने तेज झपट्टा मारा। डर के मारे धीवर कन्या जोर से चीख पड़ी।

सरदारिन पैर पटकते हुए आँगन में आई और मुनीम जी के सामने से गुजर गई। वह बड़बड़ा रही थी - भिखमंगा कोढ़ी कहीं का। "ई साली 'रडार' है कि औरत! मुनीम जी ने महाभारत बंद किया और चश्मा उतारते हुए बुदबुदाए - "नंगी नारि छिनार मुँह, जो लागे सो नीच!"

कोठरी से निकलने के बाद भिक्खू पंचगंगा घाट गया। वहाँ घंटों देह रगड़-रगड़ कर नहाता रहा। लौटते समय एक दुकान से उसने काजल की एक छोटी सी डिब्बी खरीदी। आँगन में बैठकर वह देर तक अपने घावों पर करीने से काजल लगाता रहा। जिससे वे छिप जायँ और दिखाई न दें। फिर उसने सरदारिन को बुलाया और सूद की बिना किसी शर्त पर पैसे उधार दिए। अपनी अँधेरी कोठरी में घुटनों पर ठुड्डी टिका कर गुमसुम बैठी हुई, चंपी भिक्खू को नफरत से देख रही थी। अपनी ही देह की बदबू से उसका मन घिन्ना रहा था। पैरों के पास उपेक्षा से पड़े हुए कुछ सिक्के उसकी ओर टुकुर-टुकुर ताक रहे थे। भिक्खू ने बड़ा सा कुर्ता बदन पर डाला और बाहर निकल गया।

थोड़ी देर पैदल चलने के बाद भिक्खू के पैर अकड़ने लगे। एक दुकान से उसने चंपी के कानों और नाक के लिए चाँदी की कीलें खरीदीं। आगे चलकर दर्जन भर केले खरीदे। हनुमान मंदिर के लिए रखे दान-पात्र में दो-दो रुपए के तीन सिक्के डाले। रास्ते में एक भिखारी ने उससे राम-राम की। रात को अग्रवाल धर्मशाले के सामने ही खाना खाया और एक भिखारी से बात की - "अरे रुप्पन, आजकल मेरी तबीयत खराब चल रही है। तू दिन में मंदिर के सामने बैठ लिया कर आधा पैसा लूँगा।" जब वह कोठरी में आया तो अँधेरे सन्नाटे में नालियों की बदबू घुल रही थी। चन्नर पीकर औंधे मुँह कोठरी में लुढ़का पड़ा था। भिक्खू ने उसे घृणा से देखा। आँगन के मोढ़े पर चंपी चुपचाप बैठी थी। भिक्खू ने कहा - "भीतर आकर सो क्यों नहीं जाती।" चंपी ने कोई ध्यान नहीं दिया तो

वह उठकर आया और उसकी बाँह पकड़कर उठाने लगा। चंपी ने झटक कर अपनी बाँह छुड़ायी और कोठरी में चली गई। भिक्खू ने पोटली से केले निकाले और चंपी को थमाने लगा - "ये ले, खाले।" चंपी ने झनक कर इतना जोर से अपना हाथ घुमाया कि सारे केले इधर-उधर छिटक गए। दो केले चन्नर की देह पर गिरे। वह कुनमुना कर उठा और बैठकर केले खाने लगा। थोड़ी देर बाद चन्नर और भिक्खू सो गए।

उस रात देर तक चंपी को नींद नहीं आई। हल्की सी आँख लगने पर उसने सपना देखा कि उसके पेट में छोटा सा राक्षस रेंग रहा है। उसकी देह जगह-जगह सफेद होकर मवाद से भर गई है। वह चिहुंग कर जग गई। डर के मारे उसकी साँस धौंकनी की तरह चल रही थी। दुश्चिंताओं में डरी हुई वह सोचने लगी - "अगर कुछ हो गया तो?"

कई महीने बाद। दिन के दस बज चुके थे। चन्नर काम पर जा चुका था। चंपी अभी भी सोई है। भैंस जैसी देह फूलती जा रही है। मंदिर के सामने बैठने जाना है। अभी तक लेप तैयार नहीं है। भिक्खू कुढ़ रहा है। पहले तो सवेरे ही उठ जाती थी। बाप-बेटी दोनों के चक्कर में आमदनी मारी जा रही है। वह जोर-जोर से बड़बड़ाते हुए चिल्लाने लगा। चंपी उठी - 'यह हरामखोर सोने भी नहीं देता।' - उसने गुस्से से भिक्खू की ओर देखा और नाली पर मुँह-हाथ धोने चली गई। जब भीतर आई तो जल्दी-जल्दी कटोरे में तेल और सिंदूर मिलाकर अंगुलियों से फेंटते हुए लेप तैयार करने लगी। "ये चप्पल तूने कहाँ से खरीदा है?" भिक्खू ने पूछा।

चंपी कुछ नहीं बोली और उसी तरह लेप को फेंटती रही। "सरदारिन कह रही थी। तू कल किस लड़के को लेकर कोठरी में आई थी?" भिक्खू ने पूछा।

चंपी कटोरे का लेप लेकर उसके पास बैठ गई। - "पैर इधर करो।"

"मुझे लेप नहीं लगवाना। यहीं रहूँगा कोठरी में दिन भर। मुझे कहीं नहीं जाना है" - भिक्खू आजकल बात-बात में चिड़चिड़ाता रहता है।

चंपी एक क्षण को उसकी ओर देखती रही। वह बोला - "देख, मैं सारी बातें चन्नर से कह दूँगा।"

चंपी ने कटोरा फेंक दिया - "मरो! यहीं।" और निकल गई।

"कहाँ जा रही हो?" - भिक्खू चिल्लाया।

"तुमसे मतलब!" - चंपी ने कहा और गली में मुड़ गई।

भिक्खू रोने-रोने को हो गया - "हे भगवान, इस लड़की को तो किसी का डर और लाज नहीं रह गया है।"

"काहे का डर, काहे की लाज" - सरदारिन अपने दूध के धंधे से लौट रही थी। भिक्खू से बोली - "लड़की बस एक दिन डरती है और एक बार लजाती है। तुझे नरक मिलेगा भिक्खू।"